6

अपने आप को कैसे दें

(रोमियों 12)

बदला हुआ जीवन आत्मबलिदान का जीवन है।

रोमियों 1-11 में पौलुस बड़ी तरतीब से उद्धार के मार्ग को प्रस्तुत करता और फिर दिखाता है कि इस्राएल से की गई परमेश्वर की प्रतिज्ञाओं से यह योजना कैसे मेल खा सकती है। ये अध्याय मसीही धर्म की डॉक्ट्रिन पर ज़ोर देते हैं। अध्याय 12 से पौलुस डॉक्ट्रिन पर ज़ोर देने से व्यवहार पर ज़ोर देने की ओर बढ़ता है। यह तो ऐसा है जैसे वह इस प्रश्न का उत्तर देना चाहता हो कि ''परन्तु इससे मुझे या जीने के मेरे ढंग में क्या अन्तर आएगा ?'' इस प्रश्न का उत्तर रोमियों 12-16 में मिल सकता है, जहां पौलुस पहले पाई जाने वाली डॉक्ट्रिन की सच्चाई की व्यावहारिक प्रासंगिकता पर ज़ोर देता है।

यह महत्वपूर्ण है कि पौलुस इस व्यवहारिक भाग का आरम्भ इन शब्दों से करता है: ''इसलिए हे भाइयो, मैं तुम से परमेश्वर की दया स्मरण दिला कर बिनती करता हूं, कि अपने शरीरों को जीवित, और पवित्र, और परमेश्वर को भावता हुआ बलिदान करके चढ़ाओ: यही तुम्हारी आत्मिक सेवा है'' (रोमियों 12:1)।

इस आयत पर विचार करें: (1) ध्यान दें कि पौलुस हम से ''विनती करता'' है। पौलुस को आज्ञा देने का अधिकार था पर उसने ''विनती'' करने को चुना, शायद इसलिए क्योंकि इससे आज्ञा देने के बजाय पूरे मन से समर्पण की प्रेरणा मिलनी थी जो वह चाहता था। (2) उसकी विनती ''परमेश्वर की दया'' पर आधारित है। परमेश्वर ने हम पर इतनी तरह से दया दिखाई है कि हमें उसके कार्य के लिए अपने आपको देना आवश्यक है। (3) वह विनती करता है कि हम अपने शरीरों को परमेश्वर के सामने चढ़ाएं जिसमें हमारे पास जो कुछ है और जो हम हैं वह सब शामिल होगा। (4) हम अपनी देहों को ''जीवित बलिदान'' के रूप में चढ़ाएं। स्पष्टतया यह ''मृत बलिदानों'' या पशुओं के बलिदानों से अलग करने के विचार से है। परमेश्वर को चढ़ाने के लिए वेदी पर किसी पशु को लाने के बजाय मसीह से परमेश्वर को चढ़ाने के लिए लाए गए बलिदान के रूप में वेदी पर स्वयं ही कूद जाने को कहा गया है! (5) हमारा बलिदान ''पवित्र'' और ''परमेश्वर को भावता हुआ'' हो। ''पवित्र'' बनने के लिए परमेश्वर के उद्देश्य के लिए अलग होना आवश्यक है। ''परमेश्वर को भावता हुआ'' परमेश्वर के निर्देशों को मानने की आवश्यकता का सुझाव देता है। ऐसे बलिदान का चढ़ाना हमारी ''आत्मिक आराधना'' (RSV), या हमारी ''सही सेवा'' (KJV) है। अन्य संस्करणों में ''आत्मिक सेवा'' (ASV), आराधना की आत्मिक (NASB), ''समझदार आराधना का कार्य'' (फिलिप्स) है। अपने आप को बलिदान के रूप में चढ़ाना अविवेकी या भावनात्मक नहीं बल्कि विवेकी बात है।

जो बात हम कहना चाहते हैं वह यह है कि वे रोमियों 12-16 में दिए गए निर्देशों में से शेष की भूमिका और आधार ''अपनी देहों के रूप में जीवित बलिदान चढ़ाने'' की शर्त है। मसीही जीवन जीना सीखने की कोशिश करते हुए इस आज्ञा को प्राथमिकता दी जानी चाहिए कि *सबसे बढ़कर, तुम्हें अपने आपको देना पड़ेगा!* हम ऐसा कैसे कर सकते हैं? रोमियों 12 दिखाता है कि अपने आपको देने के लिए इसका क्या अभिप्राय है।

अपने आपको देने का अर्थ है अपने आप को संसार को न देना (रोमियों 12:2)

रोमियों 12:2 कहता है: ''इस संसार के सदृश न बनो; परन्तु तुम्हारी बुद्धि के नए हो जाने से तुम्हारा चाल-चलन भी बदलता जाए, जिस से तुम परमेश्वर की भली, और भावती, और सिद्ध इच्छा अनुभव से मालूम करते रहो।'' (तुलना याकूब 1:27; 1 यूहन्ना 2:15.) मसीह हम से इस संसार के सदृश्य न बनने की इच्छा करता है। एक संस्करण में कहा गया है, ''संसार तुम्हें अपने सांचे में न ढाल ले।'' वह चाहता है कि हम बदलें ताकि हम संसार से अलग हो जाएं।

किसी ने ''सदृश्य होना'' बनाम ''बदलना'' के विचार को थर्मामीटर की तुलना थर्मोस्टेट से करके समझाया है। थर्मामीटर केवल तापमान को नापता है। यदि हम चौकस नहीं हैं तो हम मसीही लोगों के रूप में हमारे साथ ऐसा ही होगा यानी हम केवल संसार के मापदण्ड अर्थात अपने बारे में लोगों का नैतिक माण्दण्ड बन जाएंगे। इसके बजाय हमें थर्मोसटेट जैसे बनना चाहिए जो अपने आस पास के तापमान से नहीं चलता बल्कि इसे नियन्त्रित करता है। हमें अपने संसार को आत्मिक तापमान दिखाना ही नहीं बल्कि इसे नियन्त्रित करना है। विशेषकर अपने आस पास में ''नैतिक मौसम'' को ''जगत की ज्योति'' और ''पृथ्वी का नमक'' बनकर नियन्त्रित करना है।

हमें अलग तो बनना है पर यह याद रखना आवश्यक है कि अलग होने में अपने आप में कोई खूबी नहीं है। केवल दूसरे लोग इमारत में जाने के लिए दरवाजों का इस्तेमाल करते हैं इसका अर्थ यह नहीं है कि हम खिड़कियों में से प्रवेश करें; दूसरे लोग चमकीले कपड़े पहनते हैं इसका अर्थ यह नहीं है कि हम केवल काले रंग के कपड़े पहनें। इसके बजाय हमें इसलिए अलग होने की आवश्यकता है क्योंकि हम दूसरों की नहीं बल्कि परमेश्वर की इच्छा को पूरा करने की कोशिश करते हैं।

हम अलग कैसे हैं? यह बदलाव ''तुम्हारी बुद्धि के नये हो जाने'' से आता है। हमारी बुद्धि इसमें शामिल है। मसीहियत बुद्धिहीन नहीं है। मसीहियत का एक भावनात्मक आयाम है, परन्तु यह सम्पूर्ण मसीहियत नहीं है। अपनी बुद्धि के नया होने से हम उसमें बदल जाएंगे जो परमेश्वर हमें बनाना चाहता है।

हमारे बदल जाने का परिणाम यह है कि हम ''भली और भावती और सिद्ध इच्छा अनुभव से मालूम'' करेंगे। ''मालूम'' करने का विचार ''परखना,'' या ''अनुभव से जानना'' है। जब हमारी बुद्धि नई हो जाती है तो हम जान सकते हैं कि हमारे लिए परमेश्वर की इच्छा भली, सिद्ध और भावती है।

अपने आपको देने का अर्थ परमेश्वर की सेवा में अपने गुणों को देना है (रोमियों 12:3-8)

रोमियों 12:3-8 में पौलुस परमेश्वर के दानों के हमारे इस्तेमाल की बात करता है। यह वचन सिखाता है कि हम अपने दानों का सही और सम्भालकर रखें। पौलुस कहना आरम्भ करता है, ''मैं तुम में से हर एक से कहता हूं, कि जैसा समझना चाहिए, उस से बढ़कर कोई भी अपने आप को न समझे'' (रोमियों 12:3)। पौलुस यह नहीं कहता कि हम अपने आप को किसी काम के न समझें या यह कि हम अपने आपको घटिया समझें। हमें यह मानना आवश्यक है कि हमारी बहुत कदर है। क्यों? हमारी व्यक्तिगत प्राप्तियों के कारण नहीं बल्कि इन तथ्यों के कारण: परमेश्वर ने हमें बनाया, परमेश्वर हम से प्रेम करता है और मसीह हमारे लिए मरा।

इसके अलावा पौलुस यह नहीं कह रहा है कि यह कहने में कि ''मैं कुछ नहीं कर सकता। मैं प्रचार नहीं कर सकता; मैं गाने में अगवाई नहीं कर सकता; मैं बाइबल क्लास में पढ़ा नहीं सकता'' कोई विशेष रूप से संत होने की बात है। न ही यह कहने में ''मैं कुछ कर सकता हूं। मैं गाने में अगवाई कर सकता हूं; मैं प्रचार कर सकता हूं; मैं बाइबल कलास में पढ़ा सकता हूं'' कोई बुराई, घमण्ड या अक्खड़पन है। पौलुस तो यह कहता है कि हम अपने आपको उससे बढ़कर न समझें जो हम वास्तव में हैं। हमें अपने महत्व को बहुत बढ़ा चढ़ाकर या अपनी योग्यता को बहुत बढ़ाना नहीं चाहिए। यह कहना गलत नहीं है कि ''मैं गाने में अगवाई कर सकता हूं,'' या यह कि ''मैं अच्छा सौंग लीडर हूं।'' परन्तु यह कहना कि ''मैं देश में सबसे बढ़िया सौंग लीडर हूं'' अपने आप को कुछ अधिक ही मान लेना होगा। इसकी मुख्य बात जो याद रखनी चाहिए वह यह है कि जो भी दान हमें मिला है वह परमेश्वर की ओर से ही है। इसलिए उन दानों के लिए प्रशंसा के योग्य वही है, हम नहीं।

अपने आपको बहुत बड़ा मानने के बजाय हमें गम्भीरता से यो संजीदगी से सोचना चाहिए। हमें उन दानों को जो परमेश्वर ने हमें दिए हैं जानने के लिए अच्छे निर्णय का इस्तेमाल करते हुए अपना मूल्यांकन सावधानी से करना चाहिए।

हर दान परमेश्वर की ओर से मिलता है

इफिसियों 4:11 में एक प्रश्न है कि पवित्र आत्मा के आश्चर्यकर्म के दान हैं, या वे ''स्वाभाविक'' दान हैं जो परमेश्वर हमारे वंशागत, वातावरण और प्रशिक्षण से देता है या कोई आश्चर्यकर्म और कोई ''स्वाभाविक।'' इन दानों की प्रकृति पर किसी का विचार चाहे जो भी हो पर एक बात सच्ची है कि ये सभी दान परमेश्वर की ओर से हैं।

हमें अलग-अलग दान मिले हैं

पौलुस कहता है, ''क्योंकि जैसे हमारी एक देह में बहुत से अंग हैं, और सब अंगों का एक ही सा काम नहीं'' (रोमियों 12:4)। पौलुस ने सात दानों के नाम बताए हैं: (1) भविष्यवाणी। भविष्यवक्ता परमेश्वर का प्रवक्ता होता है जो परमेश्वर की इच्छा की घोषणा करता है, विश्वासियों के लिए हो या अविश्वासियों के लिए। (2) सेवा। कुछ लोगों में दूसरों की सेवा करने की भावना और खूबी होती है। (3) सिखाना। सिखाने वाला उसे कहते हैं जो परमेश्वर की इच्छा

को समझाता या उसकी व्याख्या करता है। (4) उपदेश देना। कुछ लोगों को परमेश्वर की इच्छा को पूरी करने के लिए विश्वासियों और अविश्वासियों दोनों को ताड़ना करने या समझाने का दान मिला होता। (5) दान देना। कइयों को दान देने का दान मिला होता है। यह हो सकता है कि इस दान में धन कमाने की योग्यता भी हो ताकि कोई और अधिक दे सके। (6) अगुआई करना। बेशक RSV में इस दान का अनुवाद ''सहायता देना'' है, परन्तु जैसा कि KJV में वह जो शासन करता है। या NIV या NEB में ''अगुवाई करना'' है बेहतर अनुवाद होगा। (7) दया। कुछ लोग स्वभाव से ही दूसरों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए चिंत्ति और गुणी होते हैं।

ये सभी दान हमें परमेश्वर की ओर से नहीं मिले हैं। सब कुछ परमेश्वर की ओर से ही मिलता है। कहने का अर्थ यह है कि हम सब को अलग अलग दान मिले हैं। हमें यह उम्मीद नहीं करनी चाहिए कि हर कोई हमारे जैसा ही हो और न ही हमें दूसरों के जैसे बनने की उम्मीद करनी चाहिए। हमें दूसरों को उनके दानों के कारण घटिया या अपने आपको इसलिए बढ़िया नहीं समझना चाहिए।

हम अपने दानों का इस्तेमाल पूरे दिन से करें

रोमियों 12:6-8 में इसी बात पर ज़ोर है: ''और जब कि उस अनुग्रह के अनुसार जो हमें दिया गया है, हमें भिन्न भिन्न बरदान मिले हैं।'' यह विचार आगे बना रहता है परन्तु विशेष रूप से ध्यान दें कि जो व्यक्ति दान देता है उसे उदारता से देने का उपदेश है और जो अगवाई करता है उसे, ''निष्ठा से'' अगुवाई करने के लिए कहा गया है (KJV)। परमेश्वर के उन दानों को जो आपको दिए गए हैं व्यर्थ न जानें दे बल्कि उनका इस्तेमाल ईमानदारी से उसकी सेवा में करें!

हम अपने दानों का इस्तेमाल परमेश्वर और दूसरों के लिए करें

इफिसियों 4:12 के अनुसार, परमेश्वर के दान ''मसीह की देह की उन्नति'' के उद्देश्य से दिए गए थे। एक 1 पतरस 4:10, 11 के अनुसार, हमें जो भी दान मिले हैं हमें उस दान को ''एक दूसरे की सेवा में ...'' इस्तेमाल करना चाहिए ''... जिससे सब बातों में ... परमेश्वर की महिमा प्रगट हो।'' यदि हम उन स्वाभाविक दानों को जो परमेश्वर ने हमें दिए हैं केवल अपनी सहायता के लिए इस्तेमाल करते हैं तो हम उनका दुरुपयोग कर रहे हैं। परमेश्वर ने हमें दान इसलिए दिए हैं कि हम उनका इस्तेमाल एक दूसरे के लाभ के लिए यानी कलीसिया की उन्नति करने और परमेश्वर की महिमा के लिए कर सकें!

अपने आपको देने का अर्थ प्रेम का जीवन बिताते हुए दूसरों के लिए अपने आपको देना है (रोमियों 12:9-16)

यदि सभी नहीं तो लगता है कि इनमें से अधिकतर उपदेश पहली शर्त से मिलते हैं कि ''प्रेम निष्कपट हो।'' पौलुस प्रेम भरे जीवन की बात कर रहा है जो किसी भी दूसरी बात से जो संसार में मिल सकती है अलग है। आइए इन उपदेशों पर ध्यान दें।

''प्रेम निष्कपट हो''

संसार में प्रेम के लिए जो कुछ भी होता है वह वास्तव में कपट से भरा और स्वार्थी होता

है। संसार कहता है, ''ऐसे कार्य ऐसे करो जिससे लगे कि तुम लोगों से प्रेम करते हो ताकि तुम अपने उद्देश्यों को पूरा कर सको।'' प्रभु कहता है, ''लोगों से सच्चा प्रेम करो, किसी गुप्त उद्देश्य के लिए नहीं, बल्कि इसलिए क्योंकि प्रेम मसीही व्यक्ति का ढंग है।''

''बुराई से घृणा करो; भलाई में लगे रहो''

संसार में प्रेम भलाई और बुराई में कम अन्तर करता है। कई तो यहां तक मानते हैं कि प्रेम किसी गलत चीज़ को भी सही बना सकता है। इसके विपरीत प्रभु हमें बताता है कि कोई कार्य प्रेम पूर्वक है या नहीं इसी से तय होता है कि वह सही है या नहीं। यदि यह परमेश्वर के वचन के अनुसार सही नहीं है, तो यह प्रेमपूर्वक नहीं हो सकता। प्रेम को बुराई से दूर रहने और भलाई में बने रहने का ध्यान रहता है।

''भाईचारे के प्रेम से एक दूसरे से प्रेम रखो; परस्पर आदर में एक दूसरे से बढ़ चलो''

हमें एक दूसरे के साथ सनेह से व्यवहार करना चाहिए। यह वचन कहता है कि हमें यह देखने के लिए कि कौन एक दूसरे का आदर अधिक करता है पवित्र मुकाबले में लगे होना चाहिए!

''प्रयत्न करने में आलसी न हो; आत्मिक उनमाद में भरे रहो; प्रभु की सेवा करते रहो''

भ्भाइयों के लिए प्रेम का सम्बन्ध परमेश्वर के लिए प्रेम से गहरा है। प्रभु की सेवा किए बिना हम दूसरों से वैसे प्रेम नहीं कर सकते जैसे हमें रखना चाहिए। दूसरी ओर यदि हम ''आत्मा से उज्ज्वल'' हैं तो हम ऐसे लोग होंगे जो दूसरों को और प्रिय बनना दोनों को आसान पाएंगे।

''आशा में आनन्दित रहो, क्लेश में स्थिर रहो, प्रार्थना में नित्य लगे रहो''

यह आयत कठिन समयों के लिए प्रेम में प्रासंगिक है। ऐसे समयों में, *हमें* अपनी आशा में *आनन्द* करना चाहिए। अन्य शब्दों में चाहे कितना भी बुरा क्यों न हो जाए हम अपनी आशा न छोड़ें कि और जीवन आने वाला है जहां चीज़ें बेहतर हो जाएंगे। *हमें धीरज रखना चाहिए।* हमें परमेश्वर के विश्वासयोग्य बने रहना चाहिए, चाहे हमारे रास्ते में जो भी दिक्कते क्यों न हों। *हमें निरन्तर प्रार्थना में बने रहना चाहिए।* परमेश्वर निरन्तर परेशानी के समयों में हमारी सहायता करेगा। परन्तु हमें उससे सहायता मांगते हुए उससे प्रार्थना करते रहना आवश्यक है। जब चीज़ें खराब हो जाएं, तो अपनी आशा में आनन्द करो, अपने विश्वास में बने रहो और प्रार्थना में परमेश्वर की ओर मुडे रहो।

''पवित्र लोगों को जो कुछ आवश्यक हो, उसमें उनकी सहायता करो, पहुनाई करने में लगे रहो।''

जब हम कलीसिया के लोगों से प्रेम करते हैं तो हम उनकी आवश्यकताओं को पूरी करने की कोशिश करेंगे। इसके लिए उनकी राहत के लिए उदारता से देना आवश्यक है। इसके लिए हमें ''पहुनाई करना'' भी आवश्यक है। पहली सदी की कलीसिया में पहुनाई करने का अर्थ

रविवार को कुछ मसीही लोगों को खाने पर बुलाना ही नहीं होता था। यह दूसरों के साथ भलाई करने का ढंग था। इस कारण पहुनाई करने वाले होने के लिए हमारी ज़िम्मेदारी विशेष रूप से उन लोगों की सहायता करना है जिनके कोई मित्र नहीं है, जो हमारी सामाजिक-आर्थिक श्रेणी में नहीं हैं और जो हम से तुलनात्मक रूप में निर्धन हो सकते हैं।

''अपने सताने वालों को आशीष दो, आशीष दो, श्राप न दो''

मसीही व्यक्ति अपने सताने वालों के प्रति भी प्रेम से कार्य करता है यानी वह उन्हें श्राप देने के बजाय उन्हें आशीष ही देता है! आपको संसार में ऐसा व्यवहार नहीं मिलेगा क्योंकि संसार के लोगों में आपको इस प्रकार का व्यवहार नहीं मिलेगा क्यों संसार के लोग दूसरों को हानि ही पहुंचाते हैं। यदि हानि न पहुंचाएं तो वे इंट का जवाब पत्थर से अवश्य देंगे। कम से कम अपने परेशान करने वालों को श्राप तो अवश्य देंगे। इसके विपरीत मसीही व्यक्ति न केवल दूसरों को हानि पहुंचाने और बदला लेने से बचता है, वह श्राप देकर दूसरों से हिंसा का जवाब भी नहीं देता।

''आनन्द करने वालों के साथ आनन्द करो, और रोने वालों के साथ रोअ''

मसीही प्रेम की एक विशेषता समानुभूति अर्थात दूसरों की भावनाओं को समझने की योग्यता है। जब दूसरे लोग रोते हैं तो मसीही लोग उनके दुख में सहभागी होकर उनके साथ रोते हैं। इस आयत का दूसरा भाग मानना और कठिन हो सकता है: ''आनन्द करने वालों के साथ आनन्द करो।'' दूसरे लोगों को समृद्धि मिलने पर हमारे लिए यह सोचने से अपने आपको दूर रखना कठिन हो सकता है: ''मेरे साथ ऐसा क्यों नहीं हुआ? मैं भी उतना ही हक्कदार हूं जितना वह है।'' परन्तु हमें ईर्ष्या से बचने के लिए काम करना आवश्यक है ताकि हम सचमुच में ''आनन्द करने वालों के साथ आनन्द करें।''

आपस में एक सा मन रखो, अभिमानी न हो, परन्तु दीनों के साथ संगति रखो; अपनी दृष्टि में बुद्धिमान न हो

अन्त में प्यार का ढंग यह मांग करता है कि हम सब लोगों से प्रेम रखें, जीवन में उनकी स्थिति चाहे जैसी भी हो। निर्धन लोगों को आम तौर पर संसार द्वारा तुच्छ जाना जाता, उनसे दुर्व्यवहार किया जाता और उनका लाभ उठाया जाता है। परमेश्व के लोगों के लिए ऐसा करना उचित नहीं है। वे सब लोगों से प्रेम रखते हैं, धनवान हों या निर्धन, बड़े हो या छोटे।

अपने आपको देने का अर्थ अपने शत्रुओं के साथ भलाई करते हुए अपने आपको देना है (रोमियों 12:17-21)

''दूसरों को देने का मौका देने से पहले उन्हें दे दो,'' या ''वैसा ही दो जैसा तुम्हें दिया जाता है।'' एक प्रसिद्ध स्टिकर में लिखा था, ''मैं पागल नहीं होता; मैं शांत होता।'' इसके विपरीत पौलुस हमें बताता है कि सताव पर हमारी प्रतिक्रिया कैसी होनी चाहिए।

पहले तो,ख ''जहां तक हो सके'' हम ''सब मनुष्यों के साथ मेल मिलाप'' रखें (रोमियों

12:18)।

यदि यह असम्भव हो जाता है तो हमें इस प्रकार करना आवश्यक है: (1) बुराई का बदला बुराई से कभी न दो। इसके बजाय ऐसी बातें कहो और करो जिन जो सब लोगों में समाननीय हों। (2) अपने आप बदला कभी न लो। कई बार जो हमारे साथ हुआ होता है उसका बदला लिया जाना आवश्यक होता है। जैसे अपराधियों को दण्ड दिया जाना आवश्यक है। परन्तु हमें यह नहीं सोचना है कि बदला लेना हमारा काम है। बदला परमेश्वर का है! (3) अपने शत्रुओं के लिए भलाई करो-''यदि तेरा वैरी भूखा हो तो उसे खाना खिला, यदि प्यासा हो तो उसे पानी पिला।'' क्यों? चाहे यह आयत कहती है कि ऐसा करके तूं उसके सिर पर आग के अंगारों का ढेर लगा देगा, पर अपने शत्रुओं के साथ भलाई करने का कारण यह नहीं है। इसके बजाय इसका कारण यह नहीं है कि इस प्रकार से हम बुराई को भलाई से जीत लेंगे। जब कोई हमारे साथ बुराई करता है और हम उसे वैसे ही बदला देते हैं, तो हम उसके जैसे ही बुरे बन जाते हैं। यदि हम बदल में भलाई करते हैं तो हम दिखाते हैं कि हमारी भलाई ने उसकी बुराई पर जय पा ली है।

मैंने प्रभु की कलीसिया में एक दम्पत्ति के विषय में पढ़ा जिनके जवान बेटे को एक शराबी ड्राइवर ने मार डाला जो उनके बेटे के ही उम्र का था। पहले तो उन्हें बड़ा क्रोध आया। परन्तु अन्त में वचन की बात मानने की कोशिश करते हुए वे अपने बेटे के हत्यारे के दोस्त बन गए औन उन्होंने उसके पुनर्वास में सहायता की। क्या यह कठिन होगा? हां! असम्भव? नहीं! जब हम बुराई के बदले में अपने शत्रुओं के साथ भलाई करते हैं तभी तो संसार को आसानी से पता चलता है कि हम ने अपने आपको परमेश्वर को दे दिया है।

सारांश

क्या आप अपने आपको देने को तैयार नहीं हैं? यदि ऐसा है तो यीशु के वचन सुनें: ''यदि कोई मेरे पीछे आना चाहे, तो अपने आप का इन्कार करे और अपना क्रूस उठाए, और मेरे पीछे हो ले। क्योंकि जो कोई अपना प्राण बचाना चाहे, वह उसे खोएगा, और जो कोई मेरे लिए अपना प्राण खोएगा, वह उसे पाएगा'' (मत्ती 16:24, 25)। अपने जीवन को स्वार्थ से पकड़े रखकर आप वास्तव में अपने आपको वास्तविक जीवन, अर्थात बहुतायत के जीवन यानी अनन्त जीवन से वंचित कर रहे हैं। अपने आपको देकर आप वास्तव में असली जीवन अर्थात बहुतायत के जीवन यानी अनन्त जीवन को पा लेंगे।